



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

साहित्य के आर्डने में आदिवासी समाज का प्रतिरोध और अस्मिता

शैलजा सिंह

श्री शंकराचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी

छत्तीसगढ़

9910974587

shailjasingh01345@gmail.com

डॉ. सरिता रावत

अध्यक्ष एवं सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग,

श्री शंकराचार्य प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी

छत्तीसगढ़

सार-

आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता और संस्कृति का एक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण अंग है, जिसकी जीवन-पद्धति प्रकृति, जल, जंगल और जमीन के साथ गहरे संबंध पर आधारित रही है। इतिहास के विभिन्न चरणों में औपनिवेशिक शासन, सामंती शोषण, औद्योगीकरण, विकास परियोजनाओं, खनन तथा वैश्वीकरण के कारण आदिवासी समुदायों को विस्थापन, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक संकट और अस्तित्व संबंधी चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। इन परिस्थितियों के विरुद्ध आदिवासी समाज द्वारा किए गए संघर्षों ने प्रतिरोध और अस्मिता के प्रश्न को महत्वपूर्ण बनाया। प्रस्तुत शोध पत्र में हिंदी साहित्य के संदर्भ में आदिवासी समाज के प्रतिरोध और अस्मिता के विविध आयामों का अध्ययन किया गया है। प्रतिरोध को केवल सशस्त्र संघर्ष तक सीमित न मानकर भाषा, संस्कृति, परंपरा, लोककला तथा जल-जंगल-जमीन की रक्षा के प्रयासों के रूप में भी देखा गया है। खासी विद्रोह, पलामू विद्रोह और संथाल क्रांति जैसे ऐतिहासिक संघर्षों के साथ साहित्य में उनके रूपांतरण को रेखांकित किया गया है। राकेश कुमार सिंह के उपन्यास जो इतिहास में नहीं है, राणेंद्र के ग्लोबल गांव के देवता तथा श्रीप्रकाश मिश्र के रूपतिल्ली की कथा के माध्यम से आदिवासी जीवन, विस्थापन, शोषण, सांस्कृतिक स्वायत्तता और अस्मिता-संघर्ष का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि आदिवासी साहित्य केवल पीड़ा का आख्यान नहीं, बल्कि अधिकार-बोध, स्वाभिमान, प्रतिरोध और सामाजिक न्याय की सशक्त अभिव्यक्ति है।

बीज शब्द- आदिवासी साहित्य, प्रतिरोध, अस्मिता, जल-जंगल-जमीन, सांस्कृतिक पहचान

हजारों साल जंगल में रहने वाला समाज जब कागज पर उतरा तो उसने अपनी गाथा खुद लिखी। वो गाथा प्रतिरोध की भी थी और अस्मिता की भी थी जिससे आदिवासी समाज अपनी जड़ों को बचाए रखने के लिए आदिकाल से संघर्ष करता आया है जिसे इतिहास में अनेकों नामों से चित्रित किया गया, वनवासी, जंगली, असुर, आदि। जिस आदिवासी समाज ने जल जंगल और जमीन के लिए संघर्ष करते हुए दिखे। लेकिन भारतीय समाज का मुख्यधारा पक्ष उन्हें सांस्कृतिक सामाजिक रूप से हमेशा से भिन्न समझता आया है। जिसमें पौराणिक कथाओं में आदिवासी समाज को अपराधी घोषित करता रहा है जिससे शोषित समाज के ऐसे वर्ग है जो अपने आप को समाज को इसी मनोदशा से प्रस्तुत भी करने लगते हैं।



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

राजेंद्र यादव इसके सम्बन्ध में लिखते हैं “ अपराधी जनजातियों और आदिवासियों के साथ साथ समाज व्यवस्था में अनिवार्य रूप से गुंथे हुए दलित और स्त्रियां हमारे सत्ता विमर्श में केवल “रिसीविंग एंड” पर ही रहे हैं इनके लिए सिर्फ कर्तव्य है अधिकार नहीं। इनकी जिंदगी, जीविका और रहन सहन के निर्णय भी मालिकों के हाथों में है यह जिम्मेदारी भी इनकी अपनी है कि मालिकों की कृपा के लिए कैसे अपने आपको ढाले या अनुकूलित करें, गुस्ताखी और हुकम उदूली का अपराध स्वयं गुलाम को ज्यादा डसता है यहां तक कि या तो वह आगे बढ़कर खुद सजा की मांग करता है या पचायश्चित करके अपने को पाप मुक्त करना चाहता है।”

आदिवासी समाज भारतीय प्राचीनतम समुदायों में एक है जिसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति, परंपराएं और पद्धतियां हैं आदिवासी समाज का जीवन प्रकृति से गहरा जुड़ा हुआ जल, जंगल और जमीन प्रमुख रूप से उनके लिए पूजनीय है आदिवासी समाज की संस्कृतिक पहचान ही उन्हें विशिष्ट बनाती है।

समय के साथ औपनिवेशिक खनन, औद्योगिकरण, विकास परियोजना, और वैश्वीकरण के प्रभाव से आदिवासी समाज का विस्थापन, शोषण सांस्कृतिक संकट जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जिससे उनके जीवन शैलियों को बहुत प्रभावित किया है रोजगार की समस्याएं, मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास, औद्योगिकरण के लिए जंगलों को नष्ट करना आदि प्रमुख समस्याओं के कारण आदिवासी समाज का प्रतिरोध को अभिव्यक्त करता है।

प्रतिरोध का अर्थ है अन्याय, शोषण, दमन, भेदभाव, या अधिकारों के विरुद्ध किया गया संघर्ष। आदिवासी समाज में प्रतिरोध के बल हथियारों को उठाकर संघर्ष करना नहीं है बल्कि अपनी संस्कृति, परंपराएं, भाषा, जल, जंगल और जमीन की रक्षा करना भी प्रतिरोध का स्वरूप है। आदिवासी समुदाय इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में अस्तित्व और अधिकारों की रक्षा के लिए अनेकों आंदोलन और संघर्ष किए जैसे पूर्वोत्तर भारत में खासी विद्रोह, फूकन और बरुआ का विद्रोह, मध्य भारत में पलामू विद्रोह, संथाल विद्रोह, जगदलपुर विद्रोह, स्वतंत्रता संग्रामी बिरसा मुंडा, डूया मामा विद्रोही, पश्चिम भारत में जरिया भगत, मानगढ़ बलिदान, भूला बिलोरिया विद्रोह तथा दक्षिण भारत में वीर योद्धा पझसी राजा केरल के आदिवासी किसानों की क्रांति आदि ऐसे महत्वपूर्ण विद्रोह हुए। यह प्रतिरोध हिंदी साहित्य में कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, लोकगीतों और आत्मकथाओं आदि के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

अस्मिता का अर्थ है व्यक्ति या समुदाय की पहचान, स्वाभिमान, और अस्तित्व बोध। आदिवासी समुदाय अपनी भाषा, संस्कृति, रीति रिवाज, लोककला, परम्पराओं, एवं प्रकृति से जुड़ी जीवन पद्धति और सामुदायिक मूल्यों से निर्मित होती है जब इन समुदायों के तत्वों पर संकट आता है तब अपनी पहचान और अधिकारों की रक्षा का संघर्ष अस्मिता के प्रश्न के रूप में सामने आता है। प्रतिरोध और अस्मिता एक दूसरे से गहराई से जुड़े हैं प्रतिरोध



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

के माध्यम से ही आदिवासी समाज अपनी अस्मिता की रक्षा करता है अस्मिता उन्हें संघर्ष करने की शक्ति प्रेरणा और एकता में बांधता है।

हिंदी साहित्य में आदिवासी समाज केवल पीड़ा का चित्रण नहीं करता है बल्कि उनके स्वाभिमान, अधिकार चेतना और सामाजिक न्याय को भी सशक्त रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है आदिवासी लेखकों और गैर आदिवासी लेखकों के द्वारा आदिवासी समाज पर अपने अनुभव, दृष्टिकोण के माध्यम से अंतर दिखाई देता है आदिवासी लेखक आदिवासी समाज से ही आते हैं इसलिए उनकी रचनाओं में आदिवासी जीवन, संस्कृति, परंपराएं, भाषा, संघर्ष का चित्रण प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर मिलता है वे अपने पीड़ा को शोषण को जल जंगल और जमीन के प्रश्नों को सांस्कृतिक पहचान को भीतर से अभिव्यक्त करते हैं इसलिए इनकी रचनाओं में आत्मानुभूति और सांस्कृतिक प्रामाणिकता अधिक दिखाई देती है। गैर आदिवासी लेखक आदिवासी समुदाय से नहीं आते हैं आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष, शोषण एवं अधिकारों को अपनी रचना का विषय बनाते हैं आदिवासी जीवन को व्यापक समाज के सामने लाने और सामाजिक न्याय की चेतना जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है गैर आदिवासी लेखकों को सहानुभूति सामाजिक दृष्टिकोण और शोध के आधार पर आदिवासी जीवन का चित्रण करते हैं और उनके मुद्दों को व्यापक समाज तक पहुंचाने का प्रयास करते हैं।

प्रतिरोधी चेतना: जल जंगल और जमीन की पुकार-

आदिवासी साहित्य में जल जंगल और जमीन की बात आती है तो लोगों को ये राजनीतिक नारा लगता है लेकिन ये आदिवासी समुदाय के अस्तित्व और संस्कृति, उनके पूजा विधि, अपने परंपरागत रीति रिवाज को बचाए रखने का पवित्र और अनिवार्य गुहार है।

आजादी के पहले भी और आजादी के बाद भी आदिवासी समुदायों ने जल जंगल और जमीन के लिए संघर्ष किया है लेकिन आजादी के बाद भी संविधान में कानूनी दर्जा प्राप्त हुआ फिर भी उनका संरक्षण खतरे में है वो आज भी अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष करते हैं आदिवासी समुदाय आदिकाल से जंगलों में रहते आए हैं।

“आदिवासी लोग जंगलों में युगों से रहते आए हैं और जंगलों से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं इधर परिस्थितिकी विज्ञान के तहत जंगलों जानवरों को बचाने के नाम पर विभिन्न तरह की योजनाएं, जैसे राष्ट्रीय पार्क, वन्यजीव अभ्यारण, आदि स्थापित किए गए हैं इन सबके कारण आदिवासियों को अपनी भूमि से विस्थापित होना पड़ा है आदिवासियों को पैसे व शराब का लालच देकर या कभी कभी जबरन उनकी भूमि से बेदखल कर दिया जाता है शिकार करना, मछली पकड़ना और वनोत्पाद इकठ्ठा करना आदिवासियों का परम्परागत व्यवसाय रहा है इन जंगलों में पशुओं भेड़ों की चराई पर भी रोक लगा दी जाती है।²



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

स्वतंत्रता आंदोलन में अंग्रेजों के विरुद्ध आदिवासी समुदायों ने भी भाग लिया था लेकिन किसी कारणवश वे स्वतंत्रता आंदोलन के में उन्हें शामिल नहीं किया गया है जबकि ब्रिटिश विरोध में संघर्ष की घटनाएं अनगिनत हैं और इस घटना से संबंधित लड़ाइयों के नायक भी अनगिनत हैं।

खासी विद्रोह-

“खासी विद्रोह अंचल प्रमुख सिलहट के आसपास की पहाड़ियों पर करीब 3500 वर्गमील क्षेत्र में फैले पहाड़ी इलाके थे खासी पहाड़ियों में अंग्रेजों के आने से पहले खासी आदिवासी के करीब 30 राज्य थे जो गणतंत्र पद्धति पर शासन किए जाते थे विभिन्न गणतंत्रों के मध्य अच्छा तालमेल था। अंग्रेजों ने असम के नीचे के हिस्से में सर्वप्रथम कब्जा किया। यहाँ से उसकी दृष्टि खासी क्षेत्र पर गई। उत्तर पूर्वी सीमा प्रांत के गवर्नर जनरल एजेंट डेविड स्कॉट ने खासी पहाड़ियों से होकर असम के निचले क्षेत्र तथा सिलहट के बीच सुदृढ़ मार्ग तैयार किया ताकि अंग्रेजों फौजी को आवागमन की सुविधा मिल सके और खासी मुखियाओं पर नियंत्रण किया जा सके। अंग्रेजों की यह कार्यवाही 19वीं शताब्दी के आरंभ में हुई। मार्ग बनने से पूर्व प्रस्ताव पर चर्चा के मुखिया दीवान सिंह तथा नुंगक्ला के मुखिया छत्र सिंह ने अपनी सहमति दे दी, लेकिन खिरेम के मुखिया ने इसका विरोध किया”³

पलामू विद्रोह-

आदिवासियों के पलामू क्षेत्र में ईस्ट इंडिया कंपनी ने घुसपैठ आरंभ किया। प्राकृतिक संपदा पर अंग्रेजी शासन की नजर पड़ चुकी थी। क्षेत्रों में दीवानी अधिकार मिलने के बाद भी कंपनी की नजर पलामू पर पड़ी, जबकि मुगल सत्ता के द्वारा ही दीवानी के अधिकार नहीं दिए गए थे।

पलामू के राजा जयकृष्ण राय की हत्या के बाद नए राजा बने। राजा जयकृष्ण के पोते गोपाल राय ने अपने दादा की हत्या का बदला लेने के लिए अंग्रेजों से मदद मांगी और ईस्ट इंडिया कंपनी को अवसर मिला कि पलामू क्षेत्र पर कब्जा कर सके। अंतिम पलामू किले पर अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया। “राजा चित्रजीत अपने सिंहासन पर गोपाल राय को बैठा दिया। दीवान जयनाथ ने राजा के साथ मिलकर पलामू को मुक्त करने की योजना बनाई। 4000 सैनिकों के साथ वे पहले उदयपुर पहुंचे और लड़ाई आरंभ हुई। जिसमें सार्जेंट पेलविन मारा गया। खबर मिलते ही पटना में ले.जान बैटमैन के साथ अंग्रेजी सेना भेजी गई, यद्यपि किले पर पुनः कब्जा नहीं किया जा सका लेकिन वहां के चेरों आदिवासी पीढ़ियों तक अंग्रेजों के विरुद्ध साहसिक विद्रोह करते रहे”⁴

संथाल क्रांति-

तिलका माझी ने संथाल व खरवाड़ आंदोलन किया, जिसमें अंग्रेजी सत्ता दब गई। भागीरथ बाबा को जेल में डाल दिया गया जहाँ उनके मृत्यु भी हो गई। लेकिन आंदोलन की शुरुआत हो गई थी। “सबसे बड़ा संथाल विद्रोह 1855-56 में हुआ, जिसका नेतृत्व महान संथाल क्रांतिकारी भाइयों सिदो, कान्हू, चांद और भैरों ने किया। बाद में किंव जुड़ गई कि “माराडबुरू” (संथालों के आदि देवता महादेव) ने इन चारों भाइयों को यह संदेश दिया

कि देश की आजादी के लिए लड़ाई आरंभ करो। 30 जून 1856 के दिन करीब दस हजार संथाल आदिवासी धनुष-बाण तलवार व कुठार आदि से लैस होकर भगनाडीहा में एकत्रित हुए और उन्होंने सिदो कान्हू के नेतृत्व में घोषणा कर दी कि इन दोनों के सर्वसम्मति से नेता चुन लिया गया है। उस सम्मेलन में यह निर्णय भी लिया गया कि “अब हमारे ऊपर कोई सरकार नहीं है”। थानेदार नहीं है, हकीम नहीं है, संथाल राज्य स्थापित हो गया है अब हम भैंसों के हल के पीछे चार आना तक बैलों के हल के पीछे दो आना तक मालगुजारी अपने मुखिया को देंगे। कर्ज का ब्याज भी रुपये में सिर्फ एक पैसा सालाना देना पड़ेगा। यही “ठाकुर” भगवान का आदेश है। दामिन-क-कोह की पूजा पर भी हम आदिवासियों का अपना अधिकार है”

संथाल घटना की शुरुआत इन्हीं कारणों से ही होता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के पदाधिकारियों के द्वारा दो आदिवासी महाजन को गिरफ्तार कर लिया गया, जिससे संथालों और अंग्रेजी शासन में भी टकराव और भी ज्यादा बढ़ता गया। हिंसा में थानेदार व महाजन के मृत्यु हो गई यह विद्रोह इतना भीषण हुआ कि अंग्रेजी सरकार को हार कर कहना पड़ा “संथाल लोग पथभ्रान्त हो चुकने पर भी हकीमों और अधिकारियों के पास दस दिनों के अंदर आत्मसमर्पण कर दें तो जांच के बाद नेताओं के सिवा अन्य लोगों के क्षमा प्रदान की जाएगी। अगर इस घोषणा के बाद कोई सरकार के विरुद्ध खड़ा होगा तो उसे इस अविलम्ब कड़ी सजा दी जाएगी।”⁶

आदिवासी साहित्य में ऐसे अनेक आंदोलनों से साहित्य में अनेक विधाओं में अपने प्रतिरोध को स्वर दिया है। कविता, कहानी, उपन्यास सभी में आदिवासी साहित्य रचे गए। जो समुदाय वर्षों से उपेक्षित रहा है वो अपना अधिकार अस्मिता पहचान के लिए संघर्ष के लिए खड़ा हो गया है। आदिवासी साहित्य में प्रतिरोध आधुनिक साहित्यिक ट्रेड नहीं है यह समाज के सामने जीने की शर्त है। जहाँ मुख्यधारा के साहित्य में वर्षों से इतिहास के पन्नों में गायब एक समुदाय है वो आकर वैचारिक क्रांति से पैदा हुआ है, जिसमें आदिवासी समुदाय को अपने अधिकारों को सुरक्षित करने का एक रास्ता है और वैचारिकी के माध्यम से ही पूर्णता संभव है।

आदिवासी समुदाय पर केंद्रित उपन्यास “जो इतिहास में नहीं है” के लेखक राकेश कुमार सिंह हैं, जिनमें संथाल आदिवासियों को केंद्र में रखकर उपन्यास की घोषणा की। संथाल क्रांति के बारे में ऊपर बताया ही गया है यह भारत के विभिन्न हिस्सों में फैला समुदाय है, लेकिन यह मुख्यतः झारखंड, ओडिशा, असम और पश्चिम बंगाल में मिलने वाले समुदाय हैं। इन समुदायों ने जंगल जमीन के लिए जिस तरीके से विद्रोह किया, उसका मूल्यांकन बहुत सीमित परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इतिहास में अंग्रेजों को बाहर खदेड़ने के संघर्ष के साथ यह संघर्ष आगे बढ़ता है। सिद्धो कान्हो द्वारा संथाल हूल आधार बनाकर “जो इतिहास में नहीं है” उपन्यास की रचना की गई है। हरिल मुर्मू नामक पात्र के माध्यम से अंग्रेजों द्वारा किए गए संघर्षों को चित्रित करता है उपन्यास में औपनिवेशिक व्यवस्था के शोषण को दिखाते हुए आर्थिक तंगी को भी दिखाया गया है। “आदिवासियों ने अपने पराक्रम से जंगलों को जोता था। वन्य आपदाओं, हिंसक पशुओं और प्राकृतिक विपदाओं को झेला था। जंगल



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

काटकर अपने खेत गढ़े थे। ललमु हो की कंपनी सरकार ने उन्हें खेत दिये थे। न हल न बैल और न बीज फिर किस बात का रुपया वसूलते थे”⁷

अंग्रेजों जबर्न औपनिवेशिक व्यवस्था लागू कर आदिवासियों के ढाँचे को ध्वस्त कर दिया था। और ठेकेदारी का पूरा तंत्र बना दिया, जिससे आदिवासी समुदायों का आर्थिक शोषण किया जा सके। “जंगल के परम्परागत ढाँचे और ग्राम स्वावलंबन की वन्य सामाजिक संरचना को कंपनी सरकार के हितों के अनुरूप ढालने के उद्देश्य से लार्ड कार्नवालिस ने पूरी वन्य व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर डाले। भू राजस्व की वसूली करने हेतु कम्पनी सरकार ने जंगल में एक नया वर्ग उत्पन्न किया। बिचौलियों का वर्ग साहू, बाबू और बन्दूक का प्रशासनिक तंत्र”⁸

आदिवासी साहित्य में अस्मिता-

आदिवासी उपन्यासों में आदिवासी जीवन के अद्भुत प्रसंगों, अनुभवों और शास्त्रीय संघर्षों को नए ढंग से लिखने का प्रयास किया गया है। जिसमें स्वयं आदिवासी लेखक अपने जीवन के अनुभवों के द्वारा और सामुदायिक संघर्षों को वर्णित किया है। रणेंद्र के द्वारा लिखित उपन्यास “ग्लोबल गांव के देवता” में रहने में अलग अलग संस्कृति और भाषाई योजना को कमजोर करके वैश्विक गांव का निर्माण होते वर्णित किया है। और वही दूसरी तरफ आदिवासियों का अपनी जमीनों से बेदखल किया जा रहा है। वैश्वीकरण के दौर में मुख्यधारा के साथ खेती स्थापित हो रही। जिसमें मुख्यधारा के ठेकेदार संरक्षण के द्वारा आदिम जनजातियों को मिटाने का प्रयास किया जा रहा है। “सामान्य तौर पर इन आकाशचारी देवताओं को जब अपने आकाशमार्ग से या सैटेलाइट की आँखों से छत्तीसगढ़, ओडिशा, मध्य प्रदेश, झारखंड आदि राज्यों की खनिज सम्पदा जंगल और अन्य संसाधन देखते हैं तो इन्हें लगता है कि अरे, इस पर तो हमारा हक है। उन्हें मालूम है कि राष्ट्र-राज्य तो वे ही हैं तो हक से तो उनका है। उन्हें मालूम है कि राष्ट्र राज तो ही है हक तो उनका ही हुआ। सो इन खनिजों पर जंगलों में, घूमते हुए लंगोट पहने असुर- बिरजिया उराव-मुंडा आदिवासी दलित- सदान देखते हैं तो उन्हें बहुत कोफ्त होती है। वे इन कीड़ों- मकोड़ों से निजात पाना चाहते हैं”⁹

प्रकृति में जीने वाला आदिवासी समुदाय को शिकार बना के लूट लिया गया है। राणेन्द्र ने ग्लोबल गांव के देवता उपन्यास में झारखंड के आदिवासी समुदायों के अंतरिम उपनिवेशवाद द्वारा शोषण को ध्यान खींचने की कोशिश किया है। जैसे अंसारी, ठेकेदार कन्हैया पांडे, राजेंद्र सिंह बाबू, अयोध्या सिंह, गोनू उर्फ गणेश्वर सिंह राजपूत। आंतरिक उपनिवेश को प्रतिनिधित्व चरित्र हैं। किसी के अनेक कारण लालचन असुर के चाचा की हत्या कर दी जाती है। बाबा शिवदास जैसे बहुरूपिये असुरों की सांस्कृतिक स्वायत्तता के हस्तक्षेप कर माया जाल रचते हैं।



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

स्त्री पात्र जहाँ एक ओर बाबा की शक्ति में अपनी असलियत को वर्षों से छुपाए बैठे हैं। वहीं दूसरी तरफ लालचन से नाराजगी व्यक्त करते हुए असुर समाज के पुरुषों की कमजोरी को सामने रखती है। “मर्द खासकर असुर मर्द किसी के भी झांसे में आसानी से आ जाया करते हैं। कोई भी उन्हें आसानी से बेवकूफ बना लेता है। पुरानी कहानियों से भी ये सीख नहीं लेते”¹⁰

उपन्यास का विमर्श यहीं पर खत्म नहीं होता है। बल्कि आदिवासी समुदाय के संघर्षों और चुनौतीपूर्ण बनाता है। आदिवासी समुदाय को खत्म करने लिए विश्व पटल पर तैयारी चल रही है। विश्व भर में बहुत से ऐसे देशों में आदिवासी को भगाए गए। “ग्लोबल गांव के देवता” उपन्यास में मुख्यधारा के आदिवासी समुदायों के साथ चाहे वो झारखंड के हो या छत्तीसगढ़ में शिवनाथ नदी के किनारे बस टिकने वाले आदिवासी समुदाय रहे। मुख्यधारा के बर्ताव एक समान ही रहा है। और भूगोल के विस्तार इनकी पहचान को सामने लाता है। असुर आदिवासी के संघर्ष और अस्मिता को दिखाते हुए राणेन्द्र लिखते हैं। अपने देवता सिंगबोंगा की तरह असुर आदिम जाति कभी थकती नहीं। आग से उत्पन्न, कभी लोहा पिघलाने और पिघला लोहा खानेवाले लोग खुद ही लोहा थे¹¹

श्रीप्रकाश मिश्र का आदिवासी जीवन पर आधारित उपन्यास “रूपतिल्ली की कथा”। में मेघालय में रहने वाली खासी जनजातियों के सांस्कृतिक आयामों को केंद्र में रखकर आदिवासी अस्मिता के प्रश्नों को उठाया है। रूपतिल्ली पूर्वोत्तर प्रांत की एक पहाड़ी है, जिसमें जनजातियों की सामूहिकता और पारंपरिकता की संस्कृति को समुचित संवाहन में वित्यस्त है “रूपतिल्ली की कथा” उपन्यास के अठारहवीं व उन्नीसवीं सदी तक खासी समुदाय के भौगोलिक स्थितियों पे चल रहे इतिहास को परिणत हो जाने वाली कथा है, जिसमें भय है। निर्ममता है जातीय सुख समृद्धि के साथ आत्मबली और नरबलि का भी विधान है। खासी समुदाय समाज के जीवन जगत संबंधी रहस्यों पर विचार करते हुए नरबलि के औचित्य पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। नरबलि के संबंध में वह देवघर झकाड़ी का कथन है जो प्रकृति और मानवीय जीवन के अस्मिता को जीवित करता है- “आदमी का जीवन खाकर जो आदमी को जीवन दे भला वह भी कोई देवता! जो आदमी पालनेवाला होगा, वह क्या आदमी को खाएगा? लेकिन यह सब तो तर्क की बात नहीं, विश्वास की बात है तर्क की सीमा होती है विश्वास की नहीं”¹²

खासी समुदायों में स्त्रियों को दोगुना स्थिति जैसे मुद्दों को संजीदगी से उठाते हुए समाज को द्रवीभूत करने वाली स्थितियों का विश्वस्त रेखांकन इस उपन्यास में किया गया है। इसमें स्त्रियों की समस्याओं को विपुलता के बीच स्त्री जीवन के कई उलझे अंधकारमय प्रसंग के द्वारा दिखाने का प्रयास किया गया। अपने मान्यताओं को अपरिवर्तनीय औ सर्वश्रेष्ठ समझने के साथ अपनी स्त्री अस्मिता की पहचान करती है इस कथन के माध्यम से अपनी अपने प्रतिरोध को दिखाती है जिसमें वो कहती है। “राजा का आप-पाप रोग बलाय लेकर वह अब राजा की ही तरह पवित्र प्राणी हो गया। उस पर पूरे समुदाय का भला-बुरा आश्रित हो गया था। वह उत्पादन, मौसम,



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

आपदा रोग, यहाँ तक की प्रकृति की गति को भी प्रभावित करने वाला जीव बन गया था। राजा की तरह वह देव और आदमी के बीच अनिवार्य कड़ी बन गया था। राजा इन सबका न्यासी है, उसकी मृत्यु हो गई तो सब नाश। इसलिए राजा की जगह उसका उत्सर्ग किया जायेगा¹³

खाउरा के प्रतिरोध है। उसके जाते समय रास्ते में चलने पड़ने वाले कुछ क्षणों को रोकते हुए। लड़कियाँ, युवतियों इस तरह का एक गीत गा रहे थीं।

जल पर तैरती है मृत्यु

और जीवन वायु में।

हम ले आए हैं कोनी

जो जर्द है भीतर कुछ ठोसा

घिरा, सफेद, गाढ़े जल से

हम जल को फेंक देंगे

ले आएँगे जर्दी

जल के साथ चली जाएगी मृत्यु

जीवन चला आएगा जर्दी के साथ

वह जर्दी और जल खाउरा है

जिसके भीतर से मृत्यु बाहर आएगी

भीतर जाएगा जीवन¹⁴

निष्कर्ष-

प्रस्तुत शोध-पत्र से स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज का प्रतिरोध उसके जीवन और अस्तित्व का अभिन्न हिस्सा है। जल, जंगल और जमीन केवल उसके आर्थिक संसाधन नहीं, बल्कि उसकी संस्कृति, परंपरा, आस्था और सामुदायिक अस्मिता के आधार हैं। इसलिए इन पर होने वाला किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप आदिवासी समुदाय के लिए अस्तित्व और पहचान का प्रश्न बन जाता है। ऐतिहासिक स्तर पर खासी, पलामू और संथाल जैसे विद्रोह इस प्रतिरोध की दीर्घ परंपरा को प्रमाणित करते हैं।

हिंदी साहित्य ने आदिवासी समाज के इन संघर्षों को विभिन्न साहित्यिक विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। जो इतिहास में नहीं है में औपनिवेशिक शोषण और संथाल संघर्ष, ग्लोबल गांव के देवता में वैश्वीकरण, आंतरिक उपनिवेशवाद और विस्थापन तथा रूपतिल्ली की कथा में खासी समाज की सांस्कृतिक संरचना और स्त्री-अस्मिता के प्रश्न प्रमुख रूप से उभरते हैं।



(Shodh Samay International Journal of Multidisciplinary Research)

(Openly Accessible, Peer-Reviewed & Refereed Journal)

अतः आदिवासी साहित्य को केवल हाशिए के समुदाय की पीड़ा का दस्तावेज मानना पर्याप्त नहीं है। यह अपने अधिकारों, सांस्कृतिक स्वायत्तता, सामाजिक न्याय और आत्मसम्मान के लिए संघर्षरत समुदाय की वैचारिक और रचनात्मक आवाज है। प्रतिरोध के माध्यम से आदिवासी समाज अपनी अस्मिता को सुरक्षित करता है और साहित्य उस संघर्ष को व्यापक सामाजिक विमर्श का हिस्सा बनाता है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. संपा. राजेन्द्र यादव, दलित विशेषांक, सत्ता विमर्श और दलित (खंड -2) अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. 2020 पृ.स. 7
2. संपा. रमणिका गुप्ता, आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., 2023 पृ.स. 58
3. हरिराम मीणा, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2016 , पृ. स. 53
4. पूर्वोत्तर पृ.स. 59
5. पूर्वोत्तर पृ.स. 61
6. पूर्वोत्तर पृ.स. 61
7. राकेश कुमार सिंह , जो इतिहास में नहीं है, भारतीय ज्ञानपीठ, 2021, पृ.स.
8. पूर्वोत्तर पृ.स.
9. राणेन्द्र, ग्लोबल गांव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, 2021, पृ.स. 93
10. पूर्वोत्तर पृ.स. 70
11. पूर्वोत्तर पृ.स. 28
12. श्रीप्रकाश मिश्र, रूपतिल्ली की कथा, लोकभारती प्रकाशन, 2019, पृ.स.136
13. पूर्वोत्तर पृ.स. 142
14. पूर्वोत्तर पृ.स. 142-143